प्राचीन भारतीय सामाजिक चिन्तन के दार्शनिक पक्ष : एक मीमांसा

डॉ० कृपाशंकर पाण्डेय

असिस्टेंट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
आर० डी०–डी०जे० कॉलेज मुङ्गेर,
मुङ्गेर विश्वविद्यालय मुङ्गेर, बिहार

विवेकपूर्ण दृष्टिकोण को दर्शन कहते हैं। दर्शन में बाहरी और आन्तरिक दोनों प्रकार का "देखना" सन्निहित है। दर्शन में जो देखने क्रिया है; मोटे तौर पर ऐसा लगता है कि यह आँखों से ही सम्पादित होती है परन्तु ऐसा नहीं है बल्कि समस्त इन्द्रियजन्य ज्ञान दर्शन है। ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त अंतःकरणचतुष्टय से भी जो ज्ञान होता है वह भी दर्शन है। दर्शन की सर्वोच्चता आत्मा के अपरोक्ष ज्ञान में सन्निहित है। दर्शन हमारे ऋषियों की मेधा से उत्पन्न हुआ है। प्राचीन भारतीय ऋषियों ने तप, स्वाध्याय और योगबल से अपने विवेक को पुष्ट किया था और उसी विवेक के बल पर उन्होंने तत्कालिक समाज का मार्गदर्शन किया था। उन्होंने अनेक कालजयी दर्शनग्रन्थों का सृजन किया जो आगे चलकर न केवल भारतवर्ष अपितु समग्र वसुधा के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुए। प्राचीन भारतीय समाज की संरचना के मूल में इन्हीं ऋषियों की विचारशीलता समायी हुई है। ऋषियों ने इन विचारों को अपने अनुभव के धरातल पर परखा और फिर इन्हीं पुष्ट विचारों से समाजोपयोगी सिद्धान्तों को गढ़ा।

प्राचीन भारतीय समाज के मूल में ऋषियों की दार्शनिकदृष्टि स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। उन्होंने समाज में समरसता और सहयोग बनाये रखने के लिए अनेक वैज्ञानिक उपक्रम किया था। वैदिक ऋषियों ने समाज के लोगों को योग्यतानुसार चार वर्णों में विभाजित किया था. ..ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। पुरुषसूक्त में आता है–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्य कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।(1)

उस विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, जंघों से वैश्य और चरणों से शूद्र की उत्पत्ति हुई। विराट पुरुष और कोई नहीं बल्कि समग्र अस्तित्वरूप परमात्मसत्ता ही है। ऋषियों ने वेदमंत्रों की अनुभूति करके उसे लिखा। चारों वर्णों का समान महत्त्व था। शूद्रय जिसे कुछ तथा कथित लोग निम्न समझते हैं; वे विराट पुरुष के चरण से उत्पन्न हुए। यह सर्वविदित है कि हमारे चरण ही हमारे शरीर का भार वहन करते हैं अन्यथा हम एक कदम भी नहीं चल सकते हैं। हमें जब किन्हीं का सम्मान करना होता है तब हम उनके चरणस्पर्श करते हैं। ऋषियों की

इस दार्शनिक दृष्टि की अवहेलना का ही परिणाम है ऊँच–नीच की भावना। अपनी योग्यता और रुचि के अनुसार चारों वर्ण अपने–अपने कर्त्तव्यों का सम्पादन करते थे। ब्राह्मणों के जिम्मे शिक्षा–दीक्षा और यज्ञीय विधान था। क्षत्रियवर्ण विराटपुरुष के बाहुओं से उत्पन्न होने के कारण शक्ति का प्रतीक था जिसके जिम्मे राष्ट्र की रक्षाव्यवस्था थी तथा वैश्य अन्न और धन के द्वारा चारों वर्णों का पोषण करते थे।इन योग्यताओं से जो सम्पन्न नहीं थे वे समाज के अन्य सेवाकार्य करते थे जो शूद्र कहलाते थे। चारों वर्णों का अपना महत्त्व था। वर्णों की उत्पत्ति के विषय में श्रीमद्भगवद्गीता में भी आता है। भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि गुण और कर्म के विभागपूर्वक मेरे द्वारा चारों वर्णों की सृष्टि की गयी है।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम्।।(2)

समग्र मानवजीवन को ऋषियों ने कुल चार आश्रमों में विभाजित किया था।ब्रह्मचर्य,गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास।वेदों में यत्र–तत्र आश्रमव्यवस्था का स्वरूप देखने को मिलता है–

ब्रह्मचारी चरति वे विषद् विषः सः देवानः भवत्येकमङ्गम् (3)
ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेत्गृही भूत्वा वनी भवेत्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् (4)

अत्यन्त सुव्यवस्थित ढंग से सौ वर्ष के मानवजीवन को पच्चीस–पच्चीस वर्षों के उक्त चार आश्रमों में विभाजित किया गया था। ब्रह्मचर्याश्रम में विद्या और कौशल का अर्जन, गृहस्थाश्रम में धनार्जन एवं संतानोत्पत्ति, वानप्रस्थाश्रम में पुण्यार्जनध्धर्मकार्य तथा संन्यासाश्रम में गृहत्याग करके पूर्णरूपेण आत्मकल्याण और जगद्धिताय व्यक्ति तत्पर हो जाता था। समग्र मानव जीवन इस प्रकार का विभाजन समग्र विश्व में प्राचीन भारत के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं देखने को मिलता है।यह स्वयं में सुनियोजित और विवेकपूर्ण व्यवस्था थी जो आज भी हमारे लिए प्रासंगिक हो सकती है। इसके पीछे का जो दर्शन था वह मानव जीवन को सार्थक सिद्ध से सम्बंधित था। आज भी यह व्यवस्था दूसरे रूपों में दिखायी पड़ती है। सर्वप्रथम प्राथमिक विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा फिर आजीविका हेतु रोजगार का चयन करते हुए व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। आज वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों का स्वरूप अवश्य बदला है लेकिन उसका अस्तित्व बना हुआ है।

प्राचीन भारतीय समाज में भौतिक और आध्यात्मिक दोनों उपलब्धियों को महत्त्व दिया गया। इन उपलब्धियों की सम्प्राप्ति हेतु चार पुरुषार्थों की व्यवस्था दी गयी। धर्म–अर्थ–काम–मोक्षरूप पुरुषार्थचतुष्टय का मानवजीवन हेतु अत्यन्त महत्त्व है। धर्म को जीवन के आधार के रूप में रखा गया। धर्मरहित अर्थ और काम को वर्जित माना गया। वैशेषिक सूत्रकार आचार्य कणाद ने लिखा– "यतौभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः"(5) अर्थात् जिससे लौकिक उन्नति एवं पारलौकिक उन्नतिरूप मोक्ष की प्राप्ति हो वह धर्म है। कहा गया कि–

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति।
धर्मेण पापमदनुपति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद् धर्मं परमं वदन्ति।। (6)

अर्थात् सम्पूर्ण विश्व का आधार धर्म ही है। लोग संसार में कल्याण के लिए धार्मिक व्यक्ति के पास जाते हैं। धर्म से पाप का क्षय होता है। धर्म में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। इसलिए धर्म को सबसे बड़ा कहा गया है। वाल्मीकि रामायण में भी कहा गया कि–

धर्मार्थकामाः किल जीवलोके समीक्षिताधर्मफलोदयेषु।
ये तत्र सर्वे स्युरसंशयं मे, भार्येव वश्याभिसता सपुत्रा।। (7)

अर्थात् इस जीव–जगत में धर्म–फल की प्राप्ति के अवसरों पर धर्म–अर्थ–काम ये सब निस्सन्देह जहाँ धर्म है वहाँ अवश्य प्राप्त होते हैं, जैसे पुत्रवती भार्या पति के अनुकूल रहकर सहायक होती है। धर्म के बिना अर्थ और काम अनर्थक सिद्ध होते हैं। धर्म की तरह अर्थ की भी अपनी प्रासंगिकता है। बिना अर्थ के लौकिक जीवन की कल्पना व्यर्थ है। ऋषियों ने कहा है "अर्थमूलाः क्रियाःसर्वा यत्नस्तस्यार्जने मतः"(8) धर्मपूर्वक अर्थोपार्जन करके कामनाओं का परिशमन किया जाना चाहिए।काम पुरुषार्थ भी महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थ है। गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं को धर्म से अविरुद्ध काम बताया है–

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।।(9)

विवेकपूर्ण दृष्टिकोण को दर्शन कहते हैं। दर्शन में बाहरी और आन्तरिक दोनों प्रकार का "देखना" सन्निहित है।

दर्शन में जो देखने क्रिया है आँखों से ही सम्पादित होती है। परन्तु ऐसा नहीं है बल्कि समस्त इन्द्रियजन्य ज्ञान दर्शन है। ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त अंतःकरणचतुष्टय से भी जो ज्ञान होता है वह भी दर्शन है। दर्शन की सर्वोच्चता आत्मा के अपरोक्ष ज्ञान में सन्निहित है।

मोक्ष को मानवजीवन का सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ बताया गया क्योंकि यह पुरुषार्थ शेष तीनों पुरुषार्थों का फल है।निरहंकरिता और निश्कामता की साधना से मनुष्य के सम्पूर्ण मोह का जब क्षय हो जाता है तो उसे जन्ममरण के बन्धन मोक्ष मिल जाता है। इस तरह ऋषियों ने समाज में मानवमात्र के लिए पुरुषार्थचतुष्टय का विधान करके उसके इहलोक के सुखसाधन का मार्ग प्रशस्त किया साथ ही सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मतत्त्व में उसकी नित्यस्थिति हेतु परम मांगलिक विधान भी किया।

प्राचीन भारतीय समाज में हमारे मनीषियों ने लोकमंगल की कामना का विस्तार किया था। समष्टि के मंगल में व्यष्टि का मंगल माना गया और समाज के मूलभूत तत्त्वों में इसे सम्मिलित किया गया। लोकमंगल की कामना को पूजा के मंत्रों में सम्मिलित किया गया और मानवमात्र के कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गयी–

लोकाः समस्ताः सुखिनः भवन्तु (10)
सर्वेषां मंगलं भूयात् सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग भवेत्।।(11)

न केवल तत्कालिक समाज के विभिन्न वर्गों को एक परिवार के रूप में देखा गया अपितु समग्र वसुधा को ही एक परिवार के रूप में ख्यापित किया गया तथा अपने और पराये की भावना को संकीर्ण माना गया–

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वैसुधैव कुटुम्बकम् ।। (12)

व्यक्ति के वास्तविक सुख और शान्ति की अवाप्ति पर जितनी गहराई और सूक्ष्मता से प्राचीन भारतीय चिन्तन में विचार हुआ उतनी गहराई और सूक्ष्मता से विश्व के किसी भी कोने में और किसी भी काल में नहीं हुआ।यह ऋषियों के तपःपूत चिन्तन का आनुभविक सत्य था कि बिना सेवा के आत्मिक सुख नहीं प्राप्त हो सकता अतः समाज में सेवाधर्म पर विशेष बल दिया गया। सेवा जब अहंकाररहित होकर की जाती है तो व्यक्ति का अन्तःकरण निर्मल हो जाता है और वह वास्तविक आनन्द की अनुभूति करता है। सेवाधर्म को मनीषियों ने अत्यंत दुर्लभ बताया है..

सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः (13)

समाज में सेवा के महत्त्वप्रतिपादन के पीछे सामाजिक समरसता और सहकारिता का उद्देश्य सन्निहित है।सभी लोग सेवा का कार्य करेंगे तभी चारों वर्ण अपने–अपने स्तर से समाज और राष्ट्र के लिए कार्य करते हुए आगे बढ़ सकेंगे।

प्राचीन भारत में स्त्रियों को समाज में पूरा सम्मान प्राप्त था। ऐसा कहा गया कि जहाँ नारी का सम्मान होता है वह देवगण निवास करते हैं और जहाँ नारी का अपमान होता है वहाँ समस्त क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं...

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ।।(14)

नारियों के सम्मान के पीछे जो दार्शनिक दृष्टि थी वह यह थी कि नर और नारी बाहर से भले भिन्न–भिन्न आकृतियों से युक्त लगते हों परन्तु उन दोनों के अन्दर वही परमात्मा स्थित है जो समग्र भूतों में निवास करता है। अतः न केवल स्त्रियों का सम्मान अपितु समाज के समस्त प्राणियों का सम्मान किया जाना चाहिए क्योंकि सभी प्राणियों के अन्दर ईश्वर साक्षीरूप में विद्यमान है...

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।(15)

ऋषियों ने सबके अन्दर ब्रह्म का साक्षात्कार किया इसलिए अहिंसा पर अत्यधिक बल दिया गया और जीवहत्या तथा परपीड़न को अत्यन्त निन्दनीय कहा गया। अहिंसा को परम धर्म

कहा गया। अहिंसा परमो धर्मः। (16) परम धर्म श्रुतिविदित अहिंसा।(17) अहिंसा को योगदर्शन के प्रणेता भगवान् पतंजलि ने अष्टांग योग में प्रथम स्थान पर परिगणित यम में प्रथम यम के रूप में उल्लिखित किया।(18)

प्राचीन भारत के समाज में चिन्तन की स्वतंत्रता देखने को मिलती है। प्रत्येक ऋषि अपनी दार्शनिक दृष्टि से सम्पन्न होता था। उसकी अपनी साधना पद्धति होती थी। वेदों में भी पर्याप्त वैभिन्य दिखता है।उसके वर्ण्य विषय भी विभिन्न होते हैं।किसी का किसी के लिए पूर्वाग्रह नहीं दिखता। वास्तविक धर्म को संत–महात्माओं के विवेक रूपी गुहा में स्थित बताया गया इसलिए महापुरुषों के पथ को सभी ने सराहा और उसका अनुकरण करने के लिए कहा..

वेदा विभिन्नारू स्मृतयो विभिन्ना नाऽसो मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पंथाः।।(19)

श्रम के महत्त्व से सभी परिचित थे।समाज के सभी व्यक्तियों को काम करके खाने को कहा गया।इसके पीछे ऋषियों की दार्शनिक दृष्टि थे।उन्होंने अपने अनुभव से जाना था कि बिना शारीरिक श्रम के न तो मन की शान्ति मिलेगी और न ही शरीर स्वस्थ रह सकेगा । ऋषि कहते हैं कि कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीवित रहने की इच्छा करनी चाहिए परन्तु यह श्रम अर्थात् कर्मय निश्कामता और निरहंकरिता से युक्त होना चाहिए तभी वह जीव से चिपकेगा नहीं अर्थात् उसका कर्म बन्धन नहीं बनेगा। सकाम भाव से यदि कर्म किया जायेगा तो वह कर्म जन्ममरण का हेतु बन जायेगा इसलिए निश्काम श्रम से ही हम अपनी भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति कर सकेंगे। श्रुति में आता है ...

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।(20)

प्राचीन भारतीय सामिजक चिंतन का ताना–बाना ही कुछ ऐसा बुना गया था कि समष्टि और व्यष्टि दोनों का कल्याण हो। व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से अपनी लौकिक इच्छाओं की पूर्ति करे। लेकिन किसी अन्य को क्षति पहुँचाकर अपना उत्कर्ष करना अत्यन्त हेय माना गया।लौकिक इच्छाओं की पूर्ति धर्मपूर्वक होगी तभी आध्यात्मिकता का द्वार भी खुल सकेगा। भौतिक कामनाओं की विवेकोचित पूर्ति के पश्चात् व्यक्ति आध्यात्म में प्रवेश करता है जहाँ समस्त प्रकार की कामनाओं को उखाड़ फेंका जाता है। चित्त जब निश्काम हो जाता है तो वह आत्मस्वरूप ही हो जाता है और आत्मतत्त्व की अपरोक्षानुभूति का हेतु बन जाता है। आत्मतत्त्व की अपरोक्षानुभूति प्रत्येक व्यक्ति का परम लक्ष्य होना चाहिएय ऐसा हमारे मनीषियों ने अपने अनुभूतिपरक ज्ञान से हमें बताया।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि प्राचीन भारतीय सामाजिक चिन्तन के विभिन्न दार्शनिक पक्ष हैं जो तत्कालिक समाज को दिशा देते हैं एवं हमारे ऋषिमेधा को विश्वपटल पर रखते हैं। उपनिषदों में प्राचीन भारतीय चिन्तन विशेषरूप से पुष्ट होकर हमें देखने को मिलता है। जहाँ

परमतत्त्व को ही साध्य बताया गया और इसकी प्राप्ति हेतु विभिन्न नियम एवं उपनियम बनाये गये। इस चिन्तन ने केवल प्राचीन भारत को समृद्ध बनाया अपितु यह आज तक समग्र विश्व के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो रहा है। दुनिया जब–जब वैचारिक रूप से भटकेगी तब–तब प्राचीन भारतीय ऋषियों की दार्शनिक दृष्टि उसे दिशा प्रदान करती रहेगी।

सन्दर्भ :–

1–ऋग्वेद–10.90.12
2– श्रीमद्भगवद्गीता 4.13
3–ऋग्वेद –10.105.5
4– ऐतरेय ब्राह्मण–35.2
5– वैशेषिक सूत्र–1.1.2
6–तैत्तिरीय आरण्यक–10.36
7–वाल्मीकि रामायण–2.21.56
8–नारदस्मृति
9–श्रीमद्भगवद्गीता–7.11
10– मंगल प्रार्थना
11–गरुण पुराण–35.51
12–हितोपदेश–1.69
13–नीतिशतक–58
14–मनुस्मृति–3.56
15–श्वेताश्वतरोपनिषद्–6.11
16–महाभारत–अनुशासन पर्व.115.1
17–रामचरितमानस–उत्तर काण्ड.120
18–अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाःयमाः
(पातंजल योगसूत्र–2.30)
19–महाभारत–वनपर्व.267.84
20–ईशावास्योपनिषद्–द्वितीय मंत्र

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची :–

1–ऋग्वेद–सायणभाष्य सहित महामना राजाराम शास्त्री तथा शिवराम शास्त्री गोरे(सम्पादक) 8खण्डों में बम्बई, गुजरात प्रिन्टिंग प्रेस 1882
2–श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर
3–ऐतरेय ब्राह्मण, तारा प्रिन्टिंग वर्क्स,सम्पादकानुवादक डॉ० सुधाकर मालवीय, वाराणसी,1983
4–वैशेषिक दर्शन, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.सं.2059
5–तैत्तिरीयारण्यकम्,चौखम्बा संस्कृत सिरीज वाराणसी।

6—नारदस्मृतिः,चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी
7— गरुण पुराण,गीताप्रेस गोरखपुर
8—हितोपदेश, नारायण पण्डित,बनारस टाटा प्रेस 1981
9—वैराग्यशतकम्,भर्तृहरि, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी,2002
10—मनुस्मृति, आचार्य मनु,रणधीर प्रकाशन हरिद्वार,2010
11—श्वेताश्वतरोपनिषद्, गीताप्रेस गोरखपुर
12—महाभारतम्,महर्षि वेदव्यास, गीताप्रेस गोरखपुर
13— श्रीरामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास जी ,गीताप्रेस गोरखपुर
14—योगसूत्र, महर्षि पतंजलि, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी,2002,पुनर्मुद्रण
15—ईशावास्योपनिषद्, गीताप्रेस गोरखपुर